PHIlOSOPHY

MODEL ANSWER(उतर या प्रारूप)

B. A. I Semester Major

Discuss the specific nature of Mahat as an evaluate of prakriti. How hi is related with Ahnkaras and tanmatra.

महत् के विशिष्ट स्वरूप की विवेचना प्रकृति के विकास के रूप में कीजिए। यह किस तरह अहंकार और तंमात्राओं से संबधित है?

सांख्यदर्शन सृष्टिवादी नहीं, विकावादी है। यह सभी संसारिक वस्तुओं को विकास का फल स्वीकार करता है। संसारिक वस्तुओं का कोई स्रष्टा नहीं अर्थात् इन्हें कोई उत्पन्न नहीं करता। सभी वस्तुओं का केवल अव्यक्त से व्यक्त अवस्था में विकास का आविर्भाव होता है। प्रश्न यह है कि यह विकास क्यों और क्यों होता है? विकास का कारण पुरूष और प्रकृति का संयोग है। पुरूष चेतन तथा निष्क्रिय है, प्रकृति अचेतन(जड़) तथा सक्रिय है। इस चेतना और अचेतन में (पुरूष और प्रकृति में) अंधे और लगड़े के समान संयोग होता है। विकास की प्रक्रिया या क्रम इस प्रकार हैः——

त्रिगुणात्मिका प्रकृति से सर्वप्रथम 'महत' का विकास या आविर्भाव होता है। महत् बुद्वि तत्व है जो सभी जीवों में विद्यमान है। इसका नाम 'महत्' है, क्योंकि यह विश्व का महान बीज है। महत या बुद्वि का कार्य 'अध्यवसाय' या निश्चय करना है। बुद्वि से ही हम वस्तुओं के स्वरूप का निश्चय करते हैं। बुद्वि में भी सत्व, रज और तम तीनों गुण है। अतः बुद्वि सात्विक, राजसिक और होती हतामसिक तीनों प्रकार की ै। धर्म, ज्ञान, वैराग्य और एश्वर्य आदि सात्विक बुद्वि के रूप है। अधर्म, अज्ञान,

01

या आविर्भाव होता है। अहंकार अभिमान है, इसका स्वरूप 'मैं' और 'मेरा' है अर्थात् मैं ही इसे करने में समर्थ हूँ, ये विषय मेरे लिए ही है, मै ही इसका अधिकारी हूँ आदि। अहंकार तीन प्रकार का होता है:- सात्विक(वैकारिक), राजस(तैजस) और तामस। सात्विक अहंकार में सत्वगुण की प्रधानता होती है। इससे ग्यारह इन्द्रियों (पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ, पॉच कर्मेन्द्रियॉ और एक मन) का विकास या आविर्भाव होता है। राजस अहंकार दोनो के आविर्भाव में प्रेरणा प्रदान करता है। पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ है:- चक्षु(ऑख) श्रोत्र(कान), ग्राण(नाक), रसना(जीभ) और त्वक(चमड़ा) इनसे पॉच प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है:- रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श।

पॉच कर्मेन्द्रियॉ है:- वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ। इनके पॉच कार्य हैं:- वचन, ग्रस्थ, जनन, मल-नि:सारण और प्रजनन। मन उभयात्मक है अर्थात् ज्ञानेन्द्रियॉ और कर्मेन्द्रियॉ दोनों में है। मन का कार्य संकल्प, विकल्प आदि है। तामस अहंकार से पंच तन्मात्राओं का आविर्भाव होता है। ये तन्मात्रायें अत्यन्त सूक्ष्म है। इनका ज्ञान स्पर्श, रूप, रस और गन्द। इन पंच तन्मात्राओं से आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी आदि पंचमहाभूतों की उत्पति होती है। इससे स्पष्ट है कि सांख्यदर्शन का विकास पच्चीस तत्वों का खेल है। यह खेल प्रकृति से प्रांरभ्भ होकर तन्मात्राओं तक समाप्त हो जाता है। इस खेल में पुरूष केवल देखने वाला या द्रष्टा है, वह न तो किसी का कार्य है और न कारण। प्रकृति केवल कारण है, कार्य नही। महत(बुद्वि), अहंकार और तन्मात्रऍ कार्य और कारण दोनों है। पंचमहाभूत आदि केवल कार्य है, कारण नहीं।

इसे श्लोक के द्वारा सांख्यकारिका में इस प्रकार व्यक्त किया है:-

1: प्रकृतेर्महांस्तातोडहंकरस्तस्माद् गणश्च षोडशक:।

तस्मादपि षोडशकात् पंञ्चभ्य: पञ्चभूतानि ।।22।।

02

2: मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्या: प्रकृतिविकृतय:सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृति: पुरूष: ।13।।

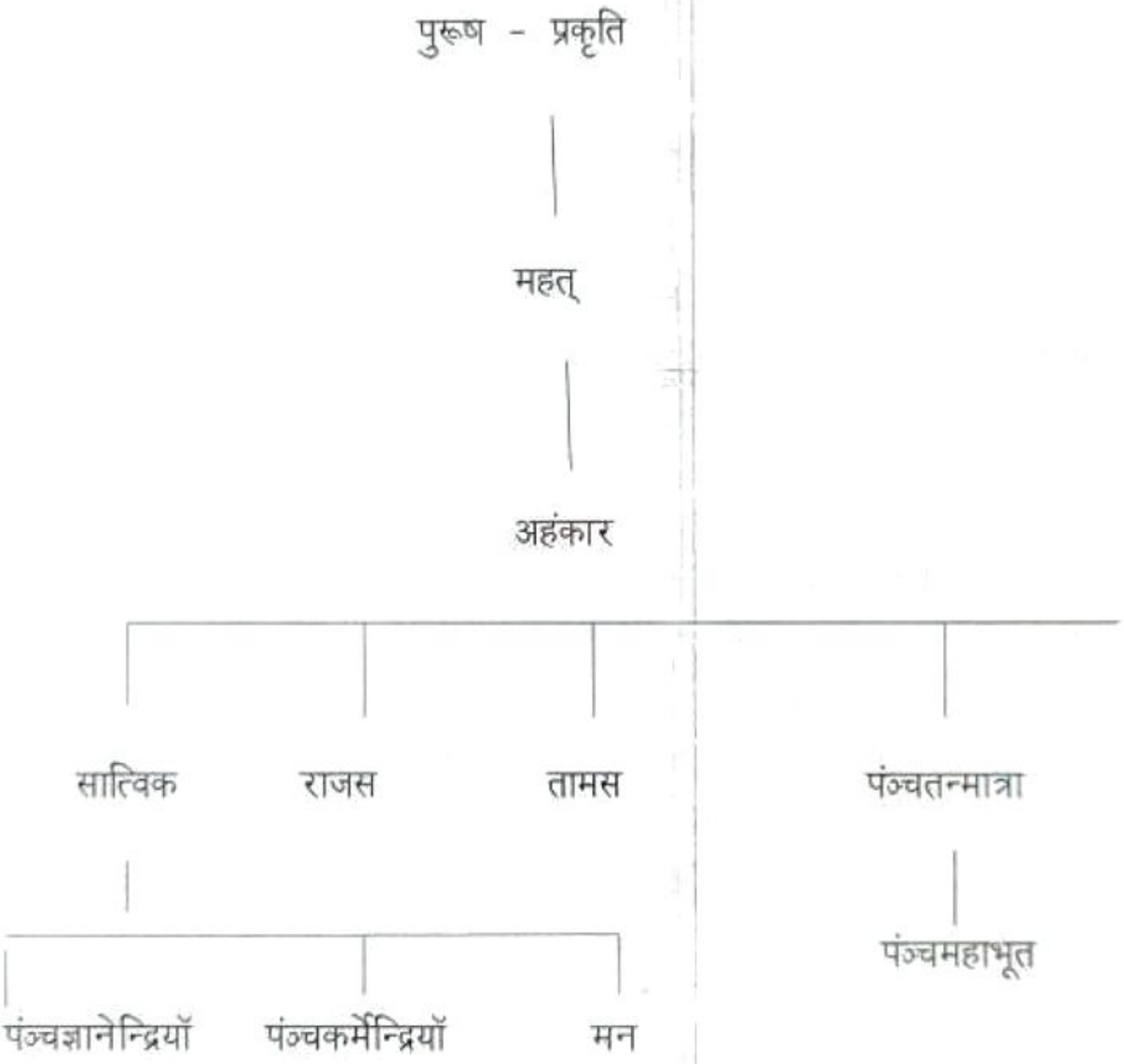

सांख्य के विकासवाद की विशेषताएँ:-

सांख्यदर्शन अव्यक्त(प्रकृति) से व्यक्त (संसार) का विकास स्वीकार करता है। मूल कारण तो प्रकृति ही है। इस कारण से ही सभी कार्यो (संसारिक वस्तुओं) का आविर्भाव होता है। इसकी विशेषताएँ:-

1: सांख्य का विकासवाद सभी संसारिक वस्तुओं की सृष्टि नहीं स्वीकार करता, वरन आविर्भाव स्वीकार करता है। इसके अनुसार मूल प्रकृति से ही सभी वस्तुओं का आविर्भाव होता है। इससे स्पष्ट होता है कि सांख्यदर्शन सृष्टिवादी नहीं। सृष्टि के लिये स्रष्टा(ईश्वर) की आवश्यकता है। सांख्यदर्शन निरीश्वरवादी है। यह ईश्वर को जगत का कारण नहीं मानता। इसके अनुसार कार्य तो अपनी उत्पति के पूर्व भी कारण में विद्यमान रहता है। यही सत्यकार्यवाद है। यदि कार्य अपनी उत्पति के पूर्व भी सत् है तो कार्य केवल कारण का रूपान्तर है, जैसे:- तेल, तिल के कणों का रूपान्तर है। उसी प्रकार जगत के सभी पदार्थ अपने कारण प्रकृति में उत्पति के पूर्व भी रहते हैं। उत्पति तो केवल रूपान्तर है। यह नवीन सृष्टि नही। अत: स्रष्टा की आवश्यकता नहीं। कारण से कार्य का आविर्भाव होता है। मूल कारण प्रकृति से सभी वस्तुओं का आविर्भाव होता है।

2: सांख्य का विकासवाद सप्रयोजन या सोदेश्य(Telelogical) है निरूदेश्य या निष्प्रयोजन नहीं सांख्य के अनुसाार जगत के विकास का मूल कारण प्रकृति और पुरूष का स्वार्थ या प्रयोजन है। प्रकृति को पुरूष की आवश्यकता भोग के लिए है और पुरूष को प्रकृति की आवश्यकता मोक्ष के लिये है। अत: भोग और मोक्ष के लिये ही प्रकृति और पुरूष का संयोग होता है तथा इस संयोग से जगत का विकास होता है। यह विकास अंध विकास(Blind Evolution) नहीं। उदाहरणार्थ:- चार्वाकदर्शन में सभी संसारिक वस्तुओं का विकास माना गया है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु आदि भौतिक तत्वों से ही सभी भौतिक वस्तुओं का विकास होता है। परंतु इस विकास का कोई कारण या प्रयोजन नहीं। चार्वाकदर्शन 'आकारणवाद' या अकस्मातवाद मानता है। भौतिक वस्तुओं का विकास भौतिक तत्वों से होता है, पंरतु यह निष्प्रयोजन है। सांख्य सप्रयोजन विकासवाद को स्वीकार करता है।

3: सांख्य का विकास चक्र(cyclic) है, सीधी रेखा(Linear) में नहीं। सांख्य के अनुसार आविर्भाव और तिरोभाव, सृष्टि और प्रलय का अनवरत चक्र चलता रहता है। अव्यक्त प्रकृति से व्यक्त संसार का विकास होता है। पुनः व्यक्त संसार और अव्यक्त प्रकृति में परिवर्तित हो जाता है। पहला आविर्भाव है तथा दूसरा तिरोभाव है। प्रथम अवस्था सृष्टि की है तथा दूसरी प्रलय की। सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि होती रहती है यदि यह विकास सीधी रेखा में होता तो किसी एक बिन्दु से प्रारंभ्भ होकर दूसरे तक समाप्त हो जाता। सीधी रेखा एक स्थान से प्रारंभ्भ होकर दूसरे तक समाप्त हो जाती है। अतः एक सृष्टि होती है और एक बार प्रलय होती है, इस प्रकार स्पष्ट होता है कि यह चक्र अनादि तथा अनंत है।

सांख्यदर्शन में दुःख की अवधारणा एवं उससे मुक्ति का उपाय?

भारतीयदर्शन की विशेषताओं में ही हमने देखा है कि दुःख की अनुभूति से ही दर्शन की उत्पति हुई, दुःख की ज्वाला से प्राणीमात्र तप्त है। इसी दुःख से निवृति या रास्ता खोजने का प्रत्यन्न किया। हमारे मनिषियों ने न्यायदर्शन में आध्यात्मिक दुःख-निवृति ही जीवन का परम ध्येय है। सांख्यकारिका के रचनाकार ईश्वरकृष्ण ने त्रिविध दुःख के नाश की जिज्ञासा से ही प्रांरभ्भ किया, गौतम बुद्व ने चारों आर्य सत्य में दुःख, उसके कारण, उसकी निवृति एवं उसके मार्ग का ही वर्णन किया। महावीर स्वामी भी दुःख के कारण से ही विरक्त हो गये। दुःख की इस व्यापकता के कारण कुछ आलोचकों ने भारतीयदर्शन पर निराशावाद का आरोप लगाया, पर यह आरोप गलत है। भारतीयदर्शन दुःख को अर्थात् जीवन के कटु सत्य को हमारे समक्ष रखता है एवं उससे मुक्त होने का रास्ता भी बतलाता है। अतः यह निराशावादी नहीं आशावादी ही है।

सांख्यदर्शन भी दु:ख का विवेचना से ही प्रांरभ्भ होता है। सांख्यकारिका का प्रथम श्लोक है:-

दु:खत्रयाभिघाताजिज्ञासा तदपघातके हेतौ।

दृष्टे साडपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोडभावात्।।1।।

अर्थात् तीन प्रकार के दु:ख से प्राणी पीड़ित है अत: दु:ख के विनाशके कारण को जानने की इच्छा करनी चाहिए। दृष्ट उपायों से ही क्या उसकी पूर्ति हो जायगी? नहीं दृष्ट यानि लौकिक उपाय से निश्चित रूप से सदा के लिए दु:ख से मुक्ति नहीं मिलती यानि दु:ख का अभाव नहीं होता।

दु:ख तीन प्रकार के है:- आध्यात्मिक दु:ख, अधि-भौतिक दु:ख एवं अधिदैविक दु:ख। आध्यात्मिक दु:ख:- आध्यात्मिक दु:ख दो प्रकार का होता है:- शारीरिक एवं मानसिक। वात, पित, कफ आदि जो शरीर के अन्दर रहते हैं, इनके व्यतिक्रम से होने वाला ज्वर, अतिसार आदि रोग शारीरिक दु:ख है। शरीर के अन्दर वात, पित, कफ का एक संतुलन होना चाहिए जब वह संतुलन नष्ट हो जाता है तो हमारा शरीर अस्वस्थ हो जाता है एवं हमें कष्ट भोगना पड़ता है। हमें केवल शारीरिक कष्ट ही नहीं है मानसिक कष्ट भी है। हमारी इच्छाओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं होने से हमें दु:ख होता है। हम जो चाहते हैं, उसे नहीं पाना दु:ख का कारण है। साथ ही जो नहीं चाहते हैं, उसे पाना भी दू:ख का कारण बनता है। तभी तो कहा गया है कि प्रिय का वियोग कष्टकर है अभीष्ट की अप्राप्ति कष्टकर हमारे जीवन का प्रत्येक अंश दु:खमय है।

अधि-भौतिक दु:ख का अर्थ है वैसे दु:ख जिनका कारण है भौतिक जगत् के स्थावर और अस्थावर तत्व, पंच भौतिक तत्व से निर्मित मानव, पशु, पक्षी कीड़े-मकोड़े एव जड़ पदार्थ यानि स्थावर तत्व से हमें जो दु:ख मिलता है वह आधि-भौतिक दु:ख है।

इनके अलावे आधि-दैविक देव अर्थात् आकाश से होता हुआ आता है जिसे दैवी प्रकोप, शीत, ताप, वर्षा, वायु, वज्र आदि से मनुष्य को जो कष्ट मिलता है, वह आधि-दैविक दु:ख है।

इस प्रकार त्रिविध दु:ख से प्रताड़ित लोगों को इस दु:ख से निवृति का उपाय जानना चाहिए या यों कहें कि उसे जानने की जिज्ञासा करनी चाहिए। अब यहाँ एक प्रश्न आता है कि कहाँ उत्पन्न हुई। कहा गया है कि ब्रहमाजी के मानसी पुत्र महार्षि कपिल जो धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य के साथ उत्पन्न हुए उन्होंने ही अज्ञान रूपी अंधकार में डूबते हुए इस संसार को देखकर जो दु:ख का कारण है, लोगों को इससे निकलने या यों कहे कि इस दु:ख के विनाश के लिए 25 तत्वों का ज्ञान दिया यह ऐसा ज्ञान है जिससे प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी आश्रम में हो दू:ख मुक्त होगा।

अब यहाँ दूसरा प्रश्न आता है कि ये जो दु:ख है, त्रिविध दु:ख है, उसको नाश का क्या उपाय है? सामान्यत: हमारे ज्ञान का आधार ज्ञान के स्रोत्र होते हैं। हम प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द आदि के माध्यम से किसी ज्ञान को प्राप्त करते हैं। अब यहाँ प्रश्न आता है कि प्रत्यक्षादि लौकिक उपायों से इन दु:खों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं? सांख्याकारिका के प्रथम श्लोक में कहा गया है कि दृष्ट उपायों से यानि प्रत्यक्षादि से ऐसा सम्भव नहीं है। शारीरिक रोग यानि दु:ख का औषधि, शल्यचिकित्सा आदि से उपसम यानि बचाव हो सकता है, पर वह सदा के लिए बचाव नहीं है। वह पुन: आ सकता है। जहाँ तक मानसिक दु:खों का प्रश्न है, अपनी प्रिय वस्तु को प्राप्त कर लेने पर एवं अप्रिय वस्तु को हटा देने पर भी हमें मन में संतोष होता है। हमारा मानसिक कष्ट दूर होता है। पर यह भी क्षणिक है, इन उपायों से भी मानसिक दु:ख का सदा के लिए नाश नहीं हो सकता।

आधि-भौतिक दु:ख के जो कारण हैं वे वाध्य हैं यदि हम उनपर नियन्त्रण कर लें तो इस दु:ख से मुक्ति मिल सकती है। जैसे:- पशुओं से

यदि हमें खतरा है तो उनसे अपने आप को रक्षा का उपाय निकाल सकते हैं। सावधानी वरत सकते हैं, पर सदा के लिए ऐसी सावधान रहना भी सभ्भव नहीं है। हम सावधान रहने पर भी आघात् या दुर्घटना को हर समय टाल नहीं सकते क्योंकि वाध्य जगत की सारी आपदाऐं किसी व्यक्ति विशेष से जुड़ी हुई नहीं है, सारे लोगों के कार्य, व्यवहार, सोच आदि समान नहीं है अत: ये घटनाऐं होती रहती है।

जहॉ तक आधि-दैविक दु:ख की बात है:- कहा जाता है कि पूजा, पाठ, जप, तप आदि से हमें आधि-दैविक दु:ख यानि दैवी, प्रकोप से छुटकारा मिल सकता है ऐसा हम इस संसार में लोगों को करते हुए देखते हैं। पर इससे भी दु:खों का पूर्णत: नाश नहीं होता है।

इन लौकिक उपायों के पश्चात् प्रश्न आता है कि क्या वैदिक उपायों से इन दु:खों का पूर्णत: नाश हो सकता है। सांख्यकारिका में कहा गया है कि लौकिक उपायों की तरह वैदिक उपाय भी कारगर सिद्व नहीं हो सकते क्योंकि वैदिक उपाय में भी अबिशुद्वि(अस्वच्छता) क्षय(नाश) और अतिशय(विशेष) से युक्त है। अतएवं इससे भी दुखों का पूर्णत: नाश नहीं हो सकता द्वितीय श्लोक(सांख्यकारिका) में कहा गया है कि वैदिक उपाय वेद पर आधारित हैं एवं वह भी आगम से ही सिद्व है।

वेदों में पशुबलि का फल स्वीकार किया गया है। अश्वमेघ यज्ञ करने वाला विजयी होती है उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं एवं वह मृत्यु को पार कर लेता है यहॉ तक की ब्रहमहत्या के पाप से भी मुक्त हो जाता है। सोमरस का सेवन कर देवता अमर हो गये एवं अपार स्वर्ग सूख के भागी हो, उन्हें शुभमय नहीं जरात्म एवं बुढ़ापा या डर नहीं। वे इस प्रकार की बाते हम वेदों में पाते हैं। अब प्रश्न है कि क्या ऐसे वैदिक उपायों से:- जहॉ मन्त्र, तन्त्र, पूजा, पाठ, यज्ञ, बलि आदि का रास्ता बताया गया है क्या दू:खों का सदा के लिए नष्ट हो सकता है? वैदिक वचनों से स्पष्ट है इत्यादि का भी नाश होता है ये क्षयमुक्त है यानि नाशवान है, उसी प्रकार अतिशययुक्त है, अपनेसे अधिक गुणवालों को

देखकर ईष्या होना यह मनवोचित् गुण है ऐसी ही उदाहरण हम देवताओं के बारे में भी पाते हैं। इन बातों से यह सिद्व होता है कि वैदिक उपाय भी दु:खों का पूर्णत: नाश नहीं कर सकते। अत: लौकिक एवं वैदिक उपायों से परे तीसरा रास्ता बताया गया है, वह है:- 25 तत्वों का ज्ञान।

सत्व, रजस् और तमस की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए। इन्हें गुण क्यों कहा जाता है?

Discuss the characteristics as three gunas satva, Rajas and Tamas. Why they are called gunas?

गुण शब्द का साधारण अर्थ विशेषण है, परंतु इसका विशेष अर्थ 'धागा' या रस्सी है। सांख्य के अनुसार सत्व, रज और तम गुण माने गए है। ये तीनों गुण प्रकृति के उपादान तत्व है। इन गुणों से पृथक प्रकृति का अस्तित्व नहीं। अत: तीन गुणों को प्रकृति का स्वरूप माना गया है। ये तीन गुण रस्सी के रेशों के समान आपस में मिलकर पुरूष के लिए बंधन का कार्य करता है। अत: इन्हें गुण कहा जाता है। सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति त्रिगुणात्मिका है, अर्थात् सत्व, रज और तम प्रकृति के गुण है। प्रकृति और गुण में संयोग संम्बन्ध होता है। संयोग संबध ऐसे दो वस्तुओं में (जैसे:- नदी और नाव में)होता है, जिनमें पहले से वियोग हो। लेकिन मुख्य रूप से प्रकृति और गुण में संयोग संबध नहीं बल्कि स्वरूप संबध पाया जाता है। यह सम्बन्ध उन दो वस्तुओं में होता है जिनका स्वरूप एक ही हो। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि प्रकृति और गुण में 'स्वरूप सम्बन्ध' ही है। प्रकृति का स्वरूप गुणों से पृथक नहीं इसलिए प्रकृति को त्रिगुणात्मिका माना गया है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि

ये तीन गुण प्रकृति के स्वाभाव है। ये गुण केवल प्रकृति के स्वरूप है स्वाभाव नहीं, क्योंकि प्रकृति और गुणों में कभी वियोग नहीं होता।

गुणों का स्वरूप:-

सांख्यदर्शन के अनुसार सत्व, रज तथा तम तीन गुण हैं। इन गुणों का सामान्य नियम है, ये तीनों गुण सर्वदा (सृष्टिकाल में) मिलकर ही कार्य करते हैं, परंतु इनके स्वाभाव में भेद है।

सत्वगुण:- सत्वगुण का स्वरूप प्रकाश है, अर्थात् यह प्रकाशक है। इस गुण के कारण ही विषय प्रकाशित होते हैं, अर्थात् हमें विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। यह लघु(हल्का) है। इस गुण के कारण ही वस्तुओं में लघुता आती है तथा विषय उर्ध्वगमन करते हैं। तात्पर्य यह है कि इसके कारण ही वस्तुओं हल्की होकर उपर की ओर जाती है। उदाहरणार्थ:- अग्नि का ज्वाला उपर उठती है। हवा बहती है, इन्द्रियॉ विषयों की ओर दौड़ती है। अग्नि, वायु, इन्द्रिय आदि में गति का कारण सत्व गुण ही है। सत्व गुण शांत तथा उज्जवल है, यह सुख उत्पन्न करता है, ज्ञान प्रदान करता है।

रजोगुण:- यह उतेजक है, चंचचल है, यह प्रेरणा प्रदान करता है। यह स्वयं चल है तथा दूसरों(अन्य गुणों) की चलायमान बनाता है। सत्व तथा तम स्वयं चलायमान नहीं, इन्हें रजों गुण ही गतिशील या चलायमान बनाता है। उदाहरणार्थ:- सत्व गुण का स्वरूप प्रकाश है और तमों गुण का स्वरूप अंधकार है। परंतु इनमें प्रकाश और अंधकार उत्पन्न करने की शक्ति रजोगुण ही प्रदान करता है। जिस प्रकार एक बहता हुआ जल का प्रवाह स्वयं तो बहता ही है, अपने साथ-साथ तृण आदि को भी प्रवाहित करता है, उसी प्रकार रजोगुण स्वयं क्रियाशील होकर अन्य गुणों को भी क्रियाशील बनाता है। इसका रंग रक्त या लाल है। यह दु:ख उत्पन्न करता है। इसे प्रवृतिशील तथा प्रेरक माना जाता है इसके कारण ही इन्द्रियों में विषयों की ओर दौड़ने की प्रवृति उत्पन्न होती है।

तमोगुण:- यह आवरण या अवरोध उत्पन्न करता है। जड़ता तथा निष्क्रियता आदि का कारण तमोगुण ही है। यह अज्ञानसूचक है, मोह का जनक है। इसके कारण ही मनुष्य निद्रा, तन्द्रा, आलस्या, अकर्मण्यता, उदासीनता और मोह आदि भाव उत्पन्न होते हैं। यह(भारी) तथा आवरोधक(नियामक)है। इसका कृष्ण या काला है।

संक्षेप में, सत्वगुण सुखदायक, प्रकाशक, स्वेत और लघु है। रजोगुण दु:खदायक, प्रेरक और रक्त है, तमोगुण अवरोधक, मोहात्मक कृष्ण(काला) है। इन तीनों गुणों सुख-दु:ख मोह रूप होने से सारा जगत सुखात्मक, दु:ख, मोह रूप होने से सारा जगत सुखात्मक, दु:खात्मक तथा मोहात्मक है। इस प्रकार प्रकृति के ये तीन गुण जगत के सभी पदार्थो के कारण है। सत्व के सभी विषय सुख, दु:ख तथा मोह या उदासीन उत्पन्न करने वाले हैं। एक ही वस्तु में ये तीनों गुण पाये जाते हैं। नदी घूमने वालों के लिए सुखात्मक है, डूबने वालों के लिए दु:खात्मक तथा नदी में तैरने वाले जीवों के लिये तटस्थ या उदासीन है। यहॉ रसिक के लिये आनंदायक, बीमार व्यक्ति के लिए कष्टदायक तथा पशु आदि के लिए उदासीन भाव को उत्पन्न करने वाला है। इससे स्पष्ट है कि संसार के सभी पदार्थ त्रिगुणात्मक है, क्योंकि त्रिगुणादि प्रकृति से उत्पन्न है।

इसे श्लोक के द्वारा सांख्यकारिका में इस प्रकार व्यक्त किया है:-

सत्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रज:।

गुरू वरणकमेव तम: प्रदीपवच्चार्थतो वृति:।।

अर्थात् सत्व रंग सफेद, रज का लाल और तम का काला है। कवि रसलीन ने नायिका की ऑखों में भी इन तीनों रंगों को दिखलाया है:-

"अभी हलाहल मद भरे, श्वेतश्याम अभारा जियत मरत झुकि-झुकि परत, जिहिचितवत रूक बार।"

गुणों का पारस्परिक संबध:- सांख्य के तीनों गुण स्वाभवत: एक दूसरे के विरोधी है। सत्वगुण प्रकाश स्वरूप है तो तमोगुण अंधकार स्वरूप है। पहला श्वेत है तो दूसरा काला। पहला लघु(हल्का) है तो दूसरा गुरू(भारी)। सत्व सुखदायक है तो रज दु:खदायक है, पहला गतिहीन है तो दूसरा गतिशील है आदि। प्रश्न यह है कि यदि तीनों गुण एक दूसरे के विरोधी है तो मिलकर कैसे कार्य करते है, सृष्टि कैसे होती है?

उपयुक्त प्रश्न के उतर में बतलाया जाता है कि ये तीनों गुण विरोधी होते हुए भी आपस में मिलकर ही कोई कार्य करते हैं। इन तीनों का उदेश्य या प्रयोजन एक है। अत: समान उदेश्य या प्रयोजन के प्राप्ति के लिये ये मिलकर कार्य करते है। इसे एक रूपक के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। जिस प्रकार तेल, बती और दीप का स्वाभाव अलग-अलग होने पर भी तीनों मिलकर प्रकाश उत्पन्न करने का कार्य करता है। इसी प्रकार तीनों गुणों का स्वाभाव विरोधी होने पर भी तीनों मिलकर संसार के सभी पदार्थो को उत्पन्न करते हैं। अत: संसार के सभी पदार्थो को उत्पन्न करने के समान प्रयोजन से ही विरोधी होकर भी मिलकर कार्य करते हैं। अर्थात् सहचारी है। अत: विरोधी रहते हुए भी सहचार इनका सर्वप्रथम स्वाभाव है। जिस प्रकार स्त्री और पुरूष के स्वाभाव में विरोध होते हुए भी संयोग और सहचार होता है, उसी प्रकार गुणों में भी।

इन गुणों की संबन्ध के दूसरी विशेषता यह है कि ये सहचारी होने के साथ-साथ दूसरे के सहायक भी हैं। सृष्टि-कार्य को उत्पन्न करना इन तीनों का स्वाभाव है। परंतु इन तीनों की सहायता से ही सृष्टि-कार्य हो सकता है। इनमें से किसी एक के अभाव में सृष्टि-कार्य नहीं हो सकता। अत: सृष्टि कार्य के लिए तीनों समानता महत्वपूर्ण है तथा एक दूसरे के सहायक है। इसे एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया जाता है। तीनों दण्डों की सहायता से एक (तिरछे कर देने पर) घट टिका रहता है, किसी एक के अभाव में घट नहीं टिका रह सकता साथ

ही साथ, घट के टिके रहने में प्रत्येक दण्ड अन्य दो दण्डों की सहायता करता है। दण्डों के समान गुण भी एक दूसरे के सहायक है। इन गुणों के संबध की तीसरा विशेषता यह है कि ये गुण अभिभावक है। ये एक दूसरे को अभिभूत करके ही अपने स्वरूप को स्पष्ट करता है। उदाहरण के लिए:- सत्व, रज और तम को अभिभूत करके ही दु:ख या विषाद को उत्पन्न कर पाता है। यदि गुण एक दूसरे को अभिभूत न करे तो अपने स्वरूप को नहीं प्राप्त कर सकते। इस प्रकार सहचारी होना अभिभावक होना गुणों के संबन्ध की विशेषताएँ हैं।

According to N. K. Sharma:-

Three gunas of Nature

(प्रकृति के तीन गुण)

सांख्य के अनुसार प्रकृति सत्व, रज और तम तीन गुणों से बनी है। सत्व, रज और तम की साम्यावस्था(State of equilibirium) को प्रकृति कहते हैं। कहा गया है कि "सत्व रज: तमसा। साम्यावस्था प्रकृति:।" या गुणानाम साम्यावस्था:।" साम्यावस्था का अर्थ है प्रत्येक गुण का अपने आप में ही परिवर्तन होना सत्व का परिवर्तन सत्व में, रज का रज में तथा तम् का तम् में। यह साम्यावस्था या शक्ति की अवस्था कहलाती है। इस अवस्था में प्रकृति से किसी भी वस्तु की उत्पति नहीं होती है। यह कहा गया है कि प्रकृति में तीन गुण है। संस्कृत में गुण के तीन अर्थ होते हैं:- a- गुण- धर्म, quality या Attribute.

b- गुण-गुन, रेशा(तत्व) Strand जैसे:- रस्सी के तीन गुण।

c- गुणा-गौरा, Secondary सांख्यदर्शन में गुण का अर्थ धर्म, quality or Attribute नहीं है बल्कि गुण का अर्थ element(तत्व या द्रब्य) है। प्रकृति का विश्लेषण करने पर उसमें तीन प्रकार के द्रब्य या तत्व(element) मिलते है। यही प्रवृति का त्रिगुण है। ये प्रवृति के

उपादान तत्व है। गुण इसलिए भी कहलाते हैं कि ये रस्सी के तीनों गुणों अथवा रेशों के समान आपस में मिलकर पुरूष को बांधते हैं। पुरूष के उदेश्य के साधन में गौरा रूप से सहायक होने के कारण भी ये गुण कहलाते हैं।

गुणों के लिए प्रमाण (Proofs for the gunas) गुणों का प्रत्यक्ष नहीं होता। उनके कार्यो अथवा प्रभावों से ही उनकी उपस्थिति का अनुमान लगाया जाता है। ये प्रभाव क्रमश: सुख-दुख, उदासीनता अथवा मोह है। सांख्य के अनुसार कार्य और कारण में तादात्म्य संबध रहता है। अत: कार्यो को देखकर कारणों का अनुमान लगाया जा सकता है।

संसार के प्रत्येक विषय में हम तीन गुण पाते हैं जिससे वे सुख-दु:ख और उदासीन उत्पन्न करते हैं। एक ही संगीत रसिक को सुख, रोगी को दु:ख और भैंस आदि पशुओं को उदासीनता देता है। उसी प्रकार एक सुंदर युवती या स्त्री जिसमें अच्छे पत्नी के सभी गुण पाए जाते हैं इससे पति को सुख, co-wife को दु:ख तथा तीसरे व्यक्ति को जिसका व्याह उससे नहीं हुआ उसमें उदासीनता रहता है। इसलिए यह अनुमान करते हैं कि स्त्री का जो मूल उपादान कारण हुआ अर्थात् प्रकृति में भी तीन गुण सत्व, रज और तम पाए जाते हैं। अलग-अलग तीनों गुणों के लक्षण इस प्रकार हैं:- "ईश्वर कृष्ण" की 'साख्यकारिका' में तीनों गुणों का लक्षण एक श्लोक में इस प्रकार बतलाया गया है:-

"सत्वं लघु प्रकाशकं अष्टम् उपष्टमकं चले च रज:।

गुरू वरण कमेव तप: प्रदीप वटयार्थ तो वृति:।"

"साख्यकारिका"

1: सत्वगुण:- लघु, प्रकाशक(illuminating) इष्टम् आनन्द स्वारूप, सुखदायक होता है। इसका स्वभाव goodness है। इसका रंग उजला माना गया है। गीता में सत्व गुण को निर्मल प्रकाशक, अनामय(निरोग)

माना गया है। कहा गया है:- "तत्र सत्व निर्मलत्वात प्रकाशकं अनामयम्।"---गीता अर्थात् सत्व गुण निर्मल होता है। प्रकाशक या ज्ञान देनेवाला होता है तथा रोग रहित होता है। इसी गुण के कारण ज्ञान विषयों(वस्तु) को प्रकाशित करता है। इन्द्रियों विषयों को ग्रहण करती है। इसी के कारण मन, बुद्वि, तेज(अग्नि) में प्रकाश तथा दर्पण में प्रतिबिम्ब रहित है। लघुता या हल्कापन के कारण उर्ध्व दिशा में गमन आदि सब सत्व गुण के कारण होते हैं। हर्ष, संतोष, तृप्ति, उल्लास सभी तरह के आनंद सत्व गुण के कारण मन में उपस्थित रहते हैं। शरीर में सत्व गुण के बढ़ने के कारण ज्ञान गुण की उत्पति होती है। सत्व गुण को श्वेत माना गया है। गीता में कहा गया है कि:- "जब शरीर के सम्पूर्ण द्वारो में जब प्रकाश और ज्ञान की उत्पति हो तो यह समझों कि सत्व गुण बढ़ रहा है।"

2: रजो गुण(रज या रजस):- कहा गया है कि:- "उपष्टमकं चले चलं च रज:।" रजगुण क्रिया का प्रवर्तक है। यह स्वयं गतिशील है तथा अन्य वस्तुओं को भी गतिशील बनाता है। रजगुण उपष्टगक अर्थात् उतेजक है। हवा का वर्णन इन्द्रियों का अपनी विषयों की ओर आर्कषित होना मन की चंचलता सब रजगुण के कारण है। सत्व और तम दोनों गतिहीन है। उसमें गति या क्रिया का संचार रजगुण करता है। रजगुण के कारण दु:ख होता है। अत: यह दु:खात्मक है। शरीरिक क्लेश तथा मानसिक कष्ट आदि जितने भी दु:ख के अनुभव है, सभी रजगुण के कारण है। यह रजोगुण रागात्मक(feeling संबधी) होता है। तथा इसकी उत्पति तृष्णा तथा आशक्ति से होती है। रजगुण जीवात्मा को कर्म में आसक्त होने से बांधता है। रजगुण के बढ़ने पर लोभ, अशुभ स्पृष्टा(इच्छा) उत्पन्न होते है। रजगुण का प्रभाव दु:ख होता है। इसका रंग लाल माना गया है।

3: तमोगुण:- "गुरूवरण कमेवतम्:।" तमोगुण गुरू(भारी) तथा ज्ञान और प्रकाश को ढ़कनेवाला तथा रोकनेवाला होगा। जिन-जिन लोगों में मूर्खता तथा अज्ञानता पाई जाती है तो यह समझना चाहिए कि उनमें तमों गुण

का अधिक प्रभाव है। तमगुण का लक्षण सत्वगुण का उल्टा माना गया है। यह प्रकाश को रोकता है जिसमें वस्तु के प्रति गति का नियंत्रण होता है। यह जड़ता तथा निष्क्रियता का प्रवर्तक है। इससे तेज आदि का रंग फीका पड़ता है। तथा मूर्खता का अधंकार उत्पन्न होता है। यह मोह अथवा अज्ञान उत्पन्न करता है। इसी से अवसाद(उदासीनता) उत्पन्न होता है। गीता में कृष्ण ने कहा है:-'हे अर्जुन संदेह अभिमानियों को मुग्ध करने वाले इस तमोंगुण को अज्ञान से उत्पन्न हुआ जानो।'' यह गुण जीवात्मा को प्रमाद(पागलपन) आलस्य तथा निन्द्रा के द्वारा बांधता है। इसका रंग काला माना गया है।

तीनों गुणों का संबध:- सत्वगुण को शुक्त, रजोगुण को रक्त तथा तमोंगुण को कृष्ण(काला) माना गया है। इन तीनों गुणों में परस्पर विरोध भी है तथा सहयोग भी है। तीनों गुणों में कोई भी अकेला नहीं रहता और न अकेला कार्य करता है। जैसे:- तेल, बती, आग, परस्पर विरोधी होकर भी दीपक के जलने में सहयोग करते हैं और प्रकाश देते हैं। उसी प्रकार संसार की प्रत्येक वस्तु में तीनों गुण पाए जाते हैं। इनमें से प्रत्येक गुण एक दूसरे को दबाने की चेष्टा करता है। जिस वस्तु में जो गुण प्रबल हो जाता है वैसा ही उस वस्तु का स्वाभाव बन जाता है। शेष दो गुण भी उस वस्तु में गौण रूप में रहते हैं। इन्हीं गुणों के कारण संसार की समस्त वस्तुओं को श्ष्ट, अनिष्ट तथा तटस्थ(उदासीन) में बांटा गया है।

गुणों के स्वरूप + विरूप परिणाम

गुणों में दो प्रकार के परिवर्तन या परिणाम होते हैं। 1: change into the Homogeneous(सख्यावस्थानम्) प्रलय की अवस्था में प्रत्येक गुण का परिवर्तन अपने आप में होता है। सत्वगुण का परिवर्तन सत्व में, रज का रज में तथा तमो गुण का तम में होता है, यह साख्य परिणाम कहलाता है। प्रलय की अवस्था से लेकर सृष्टि की अवस्था से पहले इस तरह का सख्य परिणाम होता है। यह प्रकृति की साम्यावस्था कहलाती है। इस अवस्था में किसी भी वस्तु की उत्पति नहीं

होती है। यही साख्य की मूल प्रकृति है। इस अवस्था में प्रवृति से किसी चीज की उत्पति या विकास नहीं होता।

2: change into the Heterogeneous(विस्पावस्थानम्) प्रकृति के साम्यावस्था को शांति की अवस्था में अचानक रजोगुण सबसे पहले सक्रिय हो जाता है तथा दुसरों को भी सक्रिय बना देता है। इसलिए साम्यावस्था की शांति भंग हो जाती है। प्रकृति की इस उपद्रव की अवस्था जो गुण क्षोभ (State of Disturbance) कहते हैं। सृष्टि के आरंभ्भ से लेकर प्रलय तक गुणों में जो क्षोभ रहता है वे एक दुसरे पर शक्तिशाली होने की चेष्टा करते रहते हैं। इसी अवस्था से नाना प्रकार के विषयों की उत्पति होती है। इस प्रकार का परिणाम विरूप परिणाम कहलाता है। यही गुण क्षोभ की अवस्था विकास या सृष्टि का कारण है।